Academe Journal of Education & Psychology
Volume-8, Issue-1, Year-2018
PP: 53-58 *ISSN No: 2249-040X*

सदी के अंत की हिन्दी कविता और परिवार

पूनम सूद

एसोसिएट प्रोफेसर, श्री वेंकटेश्वर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

सार

सदी के अंत की हिंदी कविता सामाजिक, सांस्कृतिक और पारिवारिक संरचनाओं में आए परिवर्तनों का सशक्त दस्तावेज है। 20 वीं सदी के अंत तक आते-आते व्यक्ति, परिवार, समाज राष्ट्र के आपसी रिश्ते आमूलचूल रूप से बदल चुके हैं। इन इकाईयों के आपसी संबंधों का निर्धारण जिन सामाजिक, ऐतिहासिक, स्थितियों के संधान में होता है, वे स्थितियां बुनियादी रूप से बदल चुकी हैं। जाहिर है कि कविता का स्वरूप भी नया कलेवर धारण करने लगा है।

सदी के आखिरी दशक में घटी कुछ घटनाओं जैसे मंडल कमीशन की सिफारिशों का लागू होना, नई आर्थिक नीति के माध्यम से भूमंडलीकरण और उदारीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत और बाबरी मस्जिद के ध्वंस ने संयुक्त परिवारों का विघटन, एकल परिवारों का उदय, नारीवादी चेतना का प्रसार, और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की मांग ने परिवार की अवधारणा को पुनर्परिभाषित किया। परिवार एक सामाजिक संस्था है जिसकी धूरी होती है संवाद, संबंध, स्नेह और सौहार्द। एक नवजात शिशु के व्यक्ति बनने से लेकर सहृदय मनुष्य बनने तक की प्रकिया में परिवार ही सबसे बड़ा निर्धारक है। समाजशास्त्री एमिल दुर्खीम परिवार नामक संस्था को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि–

"परिवार समाज की प्राथमिक इकाई है, जो व्यक्ति को सामाजिक बनाने के प्रक्रिया की शुरुआत करता है। उन्होंने कहा कि सामाजिक एकता के लिए पारिवारिक मूल्य अत्यंत आवश्यक हैं।"1

धीरे धीरे संयुक्त परिवारों का विघटन और एकल परिवार का निर्माण लेकिन फिर एकल परिवार का विघटन भी आम हो गया जिसके पीछे संवादहीनता, संबंधों की अस्थिरता और वृद्धजनों की उपेक्षा जैसा स्थितियां प्रमुख रूप से देखी जा सकती हैं, सामाजिक गतिशीलता, आर्थिक स्वतंत्रता, वैश्वीकरण और शहरीकरण ने इस विघटन को और तीव्र किया है।

भारतीय समाज के विभिन्न घटकों के आपसी रिश्ते को पुनर्संयोजित किया है। एक ओर नवोदित भारत राष्ट्र ने पचास साल पहले आम आदमी को जीवन की बुनियादी आवश्यकताएं मुहैया कराने का वादा किया था। सदी के अंत तक आते आते ने केवल ये वादे झूठे साबित हुए बल्कि पूंजी, बाजार, और तकनीकी के गठजोड़ ने मनुष्य की परिभाषा को ही बुनियादी रूप से बदल दिया। कविता के लिए 'वस्तुओं का उपभोक्ता बनता हुआ मनुष्य' एक नितान्त नई स्थिति है। नई बदलती परिस्थितियों ने 'व्यक्ति' को पूरी तरह से बदल दिया है। परिवार का ढांचा भी नए सीरे से संयोजित हो रहा है। कविता सर्वाधिक संवेदनशील व आदिम विधा होने के नाते नए संबंधों के आलोक में बन रहे परिवार को समझने का सर्वाधिक उपयुक्त साधन है। हिंदी कविता ने भी इन बदलावों को न केवल दर्ज किया, बल्कि इनके मानवीय, भावनात्मक और सामाजिक प्रभावों को भी गहनता से उकेरा। जैसे साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है वैसे है कविता भी अपने आस पास के पर्यावरण की ही देन है लीलाधर जगुड़ी लिखते हैं कि-

"कविता अपने समय की समझ से पैदा होती है.....और हर काल की कविता अपनी समझ, अपना सौन्दर्य और अपना बोध स्वयं रखती है"2

"कविता का जन्म जिस असंतोष से उत्पन्न होता है उसे अभिव्यक्ति करके वह खालीपन भरने का प्रयास है"

यदि परिवार समाज के केंद्र में है तो 'माँ' का संबंध परिवार का केंद्र बिंदु रहता है। आज माँ, पत्नी, प्रेयसी, पुत्री व सबसे पहले स्त्री की भूमिका में कितनी चुनौतियों का सामना करती चली जा रही है इस प्रश्न का सामना करना व उसे संवेदनशीलता से अनुभूति के धरातल पर उतारना इस सदी के संधि–युग में सूक्ष्मता से व्यक्त हो रहा है। इस संबंध की ऊष्मता की अनुपस्थित से उत्पन्न संकट जैसे अलगाव, अजनबियत, अकेलापन, खोखलापन, और घुटन अपने पैर पसार रहे हैं। वैश्वीकरण की अंधाधुंध धौड़ में व्यक्ति आर्थिक दबाव से इतना अधिक व्यस्त हो गया कि उसे यह भी होश नहीं है कि वह रिश्तों की दौड़ में कितने पीछे जा चुका है अवधेश प्रीत की इन पंक्तियों से समझा जा सकता है –

© National Press Associates www.academejournal.com

"पिता जब भी फोन करते लगता

माँ की मृत्यु की खबर होगी

लेकिन अक्सर वह एक बात दोहराते

माँ तुम्हें बहुत याद करती है

फुरसत निकालकर मिल जाओ!"3

जब 'घर' के 'फ्लैट' में बदलने की घटनाएं एकदम आम हो गई हैं ऐसे में कविता ने कितने मार्मिक ढंग से इस प्रश्न को उठाया है। कुँवर नारायण का यह कथन इस बात को और पुष्ट करता है –

"जीवन यथार्थ और जीवन सत्य के बीच दुनिया जैसी है और जैसी उसे होना चाहिए के बीच कहीं पर एक लगातर बेचैनी है। इस बेचैनी और आदर्श की तलाश वर्तमान सदी की कविता का कवि करता है।"4

सदी के अंतिम दशक में मध्यवर्गीय आम आदमी को सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक संघर्ष भुगतते हुए वैयक्तिक स्वतंत्रता की मांग करने, मूल्यों का विघटन होने से निराशा, कुंठा और अवसाद की स्थितियों को झेलना पड़ा। असहाय दयनीय स्थितियाँ, लगातार असफलताएं व्यक्ति को पीड़ा के दंश देने में कोई कसर नहीं छोड़ती। सामान्य जन का जीवन आर्थिक विषमताओं के अभेद दीवारों से टकराकर टूटने का अनुभव करता है। आधुनिक युग ने मनुष्य को यंत्र बना दिया और यंत्रों का गुलाम बना दिया जिससे उपजी अजनबीयत, संत्रास, एकाकीपन और निराशावाद की भावना जो व्यक्ति के जीवन के यंग बनते चले गए **राकेश रोहित** अपनी कविता में लिखते हैं कि –

"ऐसी कुछ हवा चली

चंदन वन झुलसा

रिश्तों का

अपनापन टूट गया पल सा

अपनों के बीच बसे

मिलकर भी अनमिले"5

महानगरीय जीवन के तनावों, संघर्षों और आर्थिक दबावों के नीचे कुचला व्यक्ति यदि किसी तरह एक अदद घर का सपना पूरा कर भी लेता है तो सदस्यों के अभाव से उपजी रिक्तता उसे निरंतर डसती है। आम आदमी इस कसमसाहट को केवल महसूस करके रह जाता है परंतु कवि की संवेदनशीलता इसे अभिव्यक्ति करने पूरी तरह से सक्षम है। **विष्णु खरे** की कविता **'दिल्ली में अपना एक फ्लैट'** में लिखते हैं कि–

"पिता होते तो उन्हें कौन सा कमरा देता

उन्हें देता वह छोटा कमरा

जिसके साथ गुसलखाना भी लगा है

माँ होती तो उन्हें कौन सा कमरा देता

(दिन भर तो वह रसोई में या छत पर होती बहु के साथ)

रात में वह पिता के कमरे में

(या उससे लगी बालकनी में या उनके पैताने कहीं लेट जाती)

अभी यह सिर्फ एक मकान है एक शहर की चीज, एक फ्लैट

जिसमें ड्राइंग रूम, डाइनिंग स्पेस, बेडरूम, किचेन

© National Press Associates www.academejournal.com

जैसी अनबरती, बेपहचनिव, गैर चीजें हैं

आओ और इन्हें घर में बदलो"6

सदी के अंत तक आते आते सामाजिक संरचना में एक बहुत बड़ा बदलाव लक्षित हो रहा है। विश्व सिमट कर एक परिवार बन गया है और परिवार टूट कर ईन, मीन, तीन जन का बन कर रह गया है। **राजेश जोशी** की कविता **'संयुक्त परिवार'** इस टूटन को अभिव्यक्ति करती है –

"टूटने के क्रम में टूट चुका है बहुत कुछ

अब इस घर में रहते हैं इन, मीन, तीन जन

निकलना हो कहीं तो सब निकलते हैं साथ–साथ

घर सूना छोड़कर

यह छोटा सा एकल परिवार

कोई एक बाहर चला जाए तो दूसरों को

काटने दौड़ता है यह घर"7

और अब घर भी कैसा है? परिवार व सदस्यों के अभाव में ईंट, पत्थरों की खूबसूरत कलाकृति है, आत्मा के अभाव में शरीर मात्र। औद्योगिकरण, पूंजीवाद, बाजारवाद व विज्ञापन के इस युग में घर (मकान) का चित्र उकेरते हुए **रामदरश मिश्र** अपनी कविता **'उस बच्चे की तलाश में'** लिखते हैं कि–

"बाहर से न धूप आती है न हवा

न बच्चे चहचहाते हैं न गौरैया

न पुस्तकें खुलती हैं न खिड़कियां

अपने में बंद इस मकान में

सुख का चिकना मौन दहाड़ता रहता है

न जाने कैसा एक ठहरा–ठहरा से डर है"8

इस चारदीवारी में यदि कोई उसका साथी है तो वह उसका अकेलापन। अपने ही घर में एक निर्वासन सा जीवन जीते हुए जानता है कि

"हां यह मेरा मकान है

जहां मैं यंत्रों के साथ

जागता हूँ, सोता हूँ

केवल अपने सुख से हंसता हूँ

अपने दुख से रोता हूँ"

सदी के अंत में अपने पैर फैलाए खड़ी घटनाओं, हादसों, छलों, से त्रस्त आम आदमी की यंत्रणा को शब्दशः उकेरने का काम कविता कर रही है। धीरे–धीरे चुकती जा रही परम्पराओं, क्षयग्रस्त संबंधों, को अपनी तीखी नजरों से भेद तो रही है पर कुछ करने में या समाधान देने में असमर्थ है। बीसवीं सदी के अंतिम वर्षों में कविता सभ्यता के इस **'स्लो पॉयजन'** को पहचान रही है। घटनाओं, हादसों और प्रसंगों से ठसाठस भरे सच में छिपी दरारों से प्रवेश करती हुई मनुष्य के त्रास, चीत्कार, और उम्मीद का **निजी स्फीयर** रचती हुई यांत्रिक तर्कवाद के घटाटोप में आदमी को हिलने डुलने की जगह देती है। इसलिए **राजेश जोशी** अपनी कविता **'जादू है कविता'** में कहते हैं कि–

© National Press Associates www.academejournal.com

"जादू है

जादू है

जादू है कविता

जो है

जो जैसा है

तुरत-फुरत

पलक झपकते

सब-कुछ की शक्ल

बदल डालने की ललक

जादू!

जादू

खाली टोकरी से

निकलता है

कबूतर

गुटर गुँऽऽ करता

भरता है

लम्बी-लम्बी

उड़ान।"9

अपने अभिव्यक्त अकेलेपन में 'व्यक्ति' परिवार नाम की संस्था के दरवाजे पर निरंतर दस्तक दे रहा है परन्तु उसकी आवाज को सुनवाई नहीं है इसलिए वह उस पारिवारिक दुनिया की खोज में निरन्तर लगा हुआ है जो इस विराट जग में खो गई है। अपने ही हाथों रचे उन सुगंधित, सरस संबंधों की तलाश हतप्रभ है कि कब कौन उनके बीच की ऊष्मता चुरा कर ले गया। बाजार, पूंजी, स्वार्थ या निरन्तर आगे बढ़ने की होड़? **भगवत रावत** अपनी कविता **'ऐसी कैसी नींद'** में पूछते हैं कि–

"इतना घोर अकेलापन क्या बात हो गई

कुछ तो था जो बहुत जरूरी कहीं खो गया

वरना भाषा इतनी अवश तो न थी

कि किसी तक एक दूसरे के खामोशी से रोने की

आवाज तक नहीं पहुंच पाएगी

मैं तो जग के इस विराट में

अपनी दुनिया खोज रहा हूं

जिसे रचा था मैंने अपने ही हाथों से

कौन चुरा कर उसे ले गया

ऐसी कैसी नींद लग गई!"10

© National Press Associates www.academejournal.com

महानगरीय जीवन शैली जहां सम्बन्धों का आधार महज जरूरत है और मनुष्यता विलुप्त हो गई है उसी की खोज **वेणुगोपाल** अपनी कविता **'कवि दिल्ली में है'** में करते हुए नजर आते हैं –

"कवि चाहता है

कि उसकी हर कविता

मनुष्य से शुरू हो

लेकिन

क्या करे

कि वह बेचारा

दिल्ली में है!"11

इस नए संधि स्थल पर खड़ी कविता आपके साथ रहते, उठते, बैठते, खाते लोगों को चीनहती है जो बदलती व्यवस्था की देन है। कवि निराश नहीं है इसलिए तो वह अपनी कविता **'अच्छा है कि ज्यादातर लोग ऐसे नहीं है'** में **भगवत रावत** कहते हैं कि–

"कुछ लोग कहीं कोई हाशिया नहीं छोड़ते

शब्दों के बीच छोड़ते नहीं इतनी सी भी जगह

कि जरूरत पड़े तो 'शायद' या 'हो' सकता है

जैसे शब्दों को भी कहीं रखा जा सके!"12

इस भागदौड़ भरे जीवन में यदि कुछ बचा तो वह है अकेलापन, अजनबियत का गहरा समंदर और उसमें ऊब से गोते लगाता सूना सा मन **आग्नेय** अपनी कविता **'शेष जीवन'** में मार्मिकता से इसे बयां करते हैं कि–

"कुछ नहीं बचा जीवन में

न प्रेम न आनंद न वैभव

सब कुछ बह गया समय–सलिला में

अपने ही 'घर' में हो गया हूँ अंकिचन"13

कवि अपनी इस स्थिति से उत्पन्न हताशा से तो विचलित है ही परंतु इस बात से और भी कष्ट में है उसका दुःख आपके मनोरंजन का कारण बन सकता है वह इस स्थिति को स्वीकार करने से इनकार करता है कि उसके दुःख को विज्ञापन की तरह समझा जाए और आप अपनी निज वेदना से मुक्ति का हर्ष छिपाते नजर आएं। इसलिए वह आपकी संवेदना का पात्र नहीं बनना चाहता क्योंकि वह अपनी लड़ाई में परिवार, सहृदय के बिना अकेला खड़ा है। यहाँ परिवार के बिना अकेले खड़ा होना ही इस सदी की कविताओं का मर्म हो सकता है। जो कहीं नहीं कहा जा सका उसे कविता ने शब्द दिए और वकालत की कोशिश की कि मनुष्य को मनुष्य की तरह ही देखा जाए उसे मात्र एक **प्रोडक्ट** के रूप में संज्ञा न दी जाए

संदर्भ :-

1. एमिल दुरखिम The Division of labour in Society
2. लगाव, लीलाधर जुगुड़ी पृष्ठ स. 13
3. अवधेश प्रीत, हम जमीन पृष्ठ 107
4. कुँवर नारायण, वाजश्रवा के बहाने पृष्ठ ५६
5. बाजार के बारे में कुछ विचार, राकेश रोहित, समकालीन भारतीय साहित्य अंक 143

© National Press Associates www.academejournal.com

6. विष्णु खरे, लालटेन जलाना : विष्णु खरे की चुनी हुई कविताएं पृष्ठ 27
7. राजेश जोशी, काव्य कनक, पृष्ठ 34
8. रामदरश मिश्र, बारिश में भीगते बच्चे, पृष्ठ 92
9. राजेश जोशी, एक दिन बोल पड़ेंगे, पृष्ठ 56
10. भगवत रावत, ऐसी कैसी नींद, पृष्ठ 103
11. वेणुगोपाल, हवाएं चुप नहीं रहती, पृष्ठ 55
12. भगवत रावत, ऐसी कैसी नींद, पृष्ठ 78
13. आग्नेय, मेरे बाद मेरा घर, पृष्ठ 43

© National Press Associates www.academejournal.com